UPHIN/2016/67435 | ISSN–2456–0413

पीयर रिव्यूड हिन्दी तिमाही पत्रिका

पतहर

जुलाई – सितम्बर 2025 | मूल्य ₹ 100/-

पीयर रिव्यूड हिन्दी तिमाही पत्रिका

पतहर

वर्ष 10 अंक 3
जुलाई - सितम्बर 2025
कवर सहित पृष्ठ 72 मूल्य ₹100

प्रबन्ध सम्पादक
चक्रपाणि ओझा
मो. 9919294782

सम्पादक
विभूति नारायण ओझा

सहायक सम्पादक
डॉ. कमलेश कुमार यादव
मो. 94223 86011

Email-hindipatahar@gmail.com

Mob. : 9450740268

http://patahar.blogspot.com/?m=1
www.notnul.com

दिल्ली सम्पर्क
स्वदेश सिन्हा
103 B, पाकेट ए- 1,
मयूर विहार फेज - 3, दिल्ली -110096

आवरण
बंशीलाल परमार
+91 9926494975

पतहर, स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक विभूति नारायण ओझा द्वारा ज्योति ऑफसेट प्रेस सलेमपुर देवरिया से मुद्रित एवं कार्यालय ग्राम बहादुरपुर पोस्ट बड़हरा (खुखुन्दू) जिला देवरिया (उ.प्र.) से प्रकाशित।

सम्पादक- विभूति नारायण ओझा

प्रकाशित सामग्री से सम्पादक/ प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवादास्पद मामले देवरिया न्यायालय के अधीन होगा।

UPHIN/2016/67435

ISSN-2456-0413

पीयर रिव्यूड टीम

- **प्रो. चितरंजन मिश्र,**
  पूर्व प्रति कुलपति, हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा।
- **प्रो. मुरली मनोहर पाठक,**
  कुलपति , श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- **प्रो. रामदरश राय,**
  कृतकार्य आचार्य, हिंदी विभाग एवं निदेशक पत्रकारिता संस्थान, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।
- **डॉ विक्रम मिश्र,**
  सेवानिवृत्त उपाचार्य, हिंदी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।
- **प्रो. अरविंद त्रिपाठी,**
  कृतकार्य आचार्य, हिंदी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।
- **प्रो. चन्द्रेश्वर,**
  कृत आचार्य, एम.एल.के.पी.जी. कॉलेज, बलरामपुर
- **प्रो. अंजुमन आरा,**
  अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक, उड़ीसा।
- **प्रो. अजय कुमार शुक्ला,**
  अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।
- **डॉ. सचिन गपाट,**
  सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय मुंबई।
- **डॉ. मधुसूदन सिंह,**
  सहायक आचार्य, दिग्विजय नाथ एलटी प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोरखपुर।
- **डॉ. बसुंधरा उपाध्याय,**
  सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, पिथौरागढ़, उत्तराखंड।
- **डॉ. लक्ष्मी मिश्रा,**
  सहयुक्त आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।
- **डॉ. अजीत प्रियदर्शी,**
  सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, डीएवी पीजी कॉलेज लखनऊ।
- **डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल,**
  सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, खड़गपुर कॉलेज पश्चिम बंगाल।
- **डॉ. उन्मेष कुमार सिन्हा,**
  सहायक आचार्य, हिन्दी, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद
- **डॉ. विजय आनंद मिश्र,**
  सहायक आचार्य हिन्दी, जेएलएन पीजी कालेज, महराजगंज।
- **डॉ संदीप कुमार सिंह**
  सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बगहा।
- **डॉ बिपिन कुमार यादव,**
  सहायक आचार्य, जेएलएन पीजी कालेज, महराजगंज।

खाता विवरण – पतहर, खाता सं. : 98742200010701
IFSC : CNRB0019874, केनरा बैंक, खुखुन्दू, देवरिया

गूगल पे : 9450740268

सदस्यता शुल्क विवरण पृष्ठ 53 पर देखें

हिंदी भाषा का विकास स्वतंत्रता-पूर्व काल से ही सतत रूप से होता आया है। स्वतंत्र भारत में जब हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, तब से इसके विकास और विस्तार ने नई गति प्राप्त की। आज यह केवल भारत तक सीमित नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रमों ने भी इसकी महत्ता और प्रासंगिकता को नए आयाम प्रदान किए हैं। हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की वाहक और संवाहक भाषा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी सहजता, सरलता और कोमलता है। यह आमजन की भाषा है— संवाद की भाषा, हृदय की भाषा। स्वतंत्रता के आठ दशक बीतने को हैं, और इस अवधि में हिंदी ने भारतीय भाषाओं के मध्य सर्वाधिक विस्तार प्राप्त किया है। शासन-प्रशासन के कार्यालयों में कार्य की भाषा हो या विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की अध्ययन सामग्री— हिंदी सर्वत्र अपने अस्तित्व के साथ उपस्थित है। राजनीतिक और क्षेत्रीय दबावों के बावजूद हिंदी आज भी अपने सशक्त आधार पर दृढ़ता से खड़ी है। समय और समाज के साथ कदम मिलाते हुए इसने स्वयं को तकनीकी युग की भाषा के रूप में भी स्थापित किया है। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी आज कंप्यूटर और डिजिटल माध्यमों की सशक्त भाषा बन चुकी है। यद्यपि अंग्रेजी के प्रभाव ने मध्यमवर्गीय समाज को कहीं न कहीं प्रभावित किया है, तथापि हिंदी के प्रति आमजन का प्रेम और निष्ठा इसे निरंतर सशक्त बनाते रहे हैं।

जब स्वतंत्र भारत अपने 78 वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है और हम 'आजादी का अमृत महोत्सव' मना रहे हैं, तब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि हिंदी अब तक राष्ट्रभाषा क्यों नहीं बन सकी। यद्यपि इसे राजभाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त है और यह देश के अधिकांश हिस्सों में बोली और समझी जाती है, तथापि मेरा मत है कि अब समय आ गया है कि राजभाषा को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा देकर इस बहस का समापन किया जाए क्योंकि गाँधी जी ने भी कहा था कि- 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है तथा अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता-समझता है और हिन्दी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है।' भारतीय भाषाओं का अपना विशिष्ट अस्तित्व और महत्व है। संस्कृत, जो हमारी प्राचीनतम भाषा है और जिससे अनेक भाषाओं का उद्गम हुआ, आज भले ही सीमित जनसंख्या तक सिमट गई हो, परंतु लुप्तप्राय नहीं हुई। विश्व की अनेक भाषाएं काल के प्रवाह में विलुप्त हो गईं, किंतु हिंदी ने हर परिस्थिति में अपने अस्तित्व को बनाए रखा और आज एक सशक्त, जीवंत भाषा के रूप में स्थापित है।

'पतहर' हिंदी भाषी क्षेत्र से प्रकाशित होने वाली एक ऐसी पत्रिका है जो अपने स्थापना काल से ही हिंदी पट्टी के रचनाकारों को प्रमुखता देती आई है। पत्रिका का उद्देश्य केवल स्थापित रचनाकारों को मंच प्रदान करना ही नहीं, बल्कि नवोदित लेखकों को भी रचनात्मक अवसर उपलब्ध कराना है। 'पतहर' सदैव जिम्मेदारी के साथ चयनित सामग्री प्रस्तुत करती है, जो विद्यार्थियों, शिक्षकों, शोधार्थियों और समाज के प्रबुद्ध वर्गों के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। 'पतहर' अपने प्रकाशन के एक दशक पूरे कर रही है। यह छात्रों, युवाओं, शिक्षकों, विश्वविद्यालयों तथा समाज के विविध वर्गों में समान रूप से लोकप्रिय हो चुकी है। पाठकों के निरंतर स्नेह और सहयोग ने हमारा उत्साह बढ़ाया है, और हम प्रत्येक अंक को संग्रहणीय बनाने का प्रयास कर रहे हैं। पिछले अंकों के अनुभव से हमने पत्रिका की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार किए हैं।

पत्रिका के इस अंक में विविध शोध आलेखों के माध्यम से साहित्यकारों और रचनाकारों के विचार-संसार को समझने का अवसर मिलेगा। भारतीय ज्ञान परंपरा, ज्योतिष, भारतेंदु हरिश्चंद्र की आलोचना, मैथिलीशरण गुप्त, ज्योति प्रसाद आगरवाला, मीराबाई और भारत में अनुवाद की परंपरा पर केंद्रित शोध आलेख इस अंक को विशेष बनाते हैं। स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी कहानी में महिला लेखन पर प्रकाशित आलेख स्त्री-सृजन के महत्व को रेखांकित करता है। भारतीय संगीत में प्रयुक्त वाद्ययंत्रों पर आलेख, हिंदी की आंचलिक उपन्यासों की समीक्षा, तथा लघु कथाओं के अंतर्गत वीरेंद्र बहादुर सिंह, डॉ. महिमा श्रीवास्तव, पवन शर्मा की रचनाएं पठनीय हैं। मनीष कुमार सिंह की कहानी 'छाया' और शिव अवतार पाल की 'सौदा' भी इस अंक की विशेष आकर्षण हैं। डॉ. राकेश जोशी की ग़ज़लें तथा डॉ. अमित रंजन की कविता अंक की काव्यमयता को समृद्ध करती हैं।

हिंदी दिवस के संदर्भ में डॉ. अर्पण जैन, डॉ. नंदकिशोर शाह और डॉ. पूनम के आलेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पुस्तक चर्चा स्तंभ में ग़ज़लकार विनय मिश्र के ग़ज़ल-संग्रह 'रंग वारिश' की समीक्षा तथा विभिन्न साहित्यिक आयोजनों के रिपोर्ट भी सम्मिलित हैं। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में ---

वो अपनों की बातें, वो अपनों की ख़ू—बू
हमारी ही हिंदी, हमारी ही उर्दू!
ये कोयल्-ओ-बुलबुल के मीठे तराने
हमारे सिवा इनका रस कौन जाने!

इस अंक पर आपके बहुमूल्य सुझावों और प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। आप सभी को स्वतंत्रता दिवस और हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं।

- **विभूति नारायण ओझा,**
सम्पादक

इस अंक में

❖ **सम्पादकीय** 2

❖ **शोध पत्र**

- **आलोचना का स्वरूप एवं भारतेन्दु की आलोचना-दृष्टि** 4
  – डॉ.अभिषेक कुमार मिश्र
- **मैथिलीशरण गुप्त और ज्योति प्रसाद आगरवाला की काव्य व गीतों में राष्ट्रीय चेतना** 9
  – मंजूरी डेका
  – डॉ आशीष पाण्डेय
- **भोजपुरी लोकगीतों में राम का चरित्र** 13
  – आशीष कुमार मिश्र
  – डॉ. सुनील कुमार
- **मीरा के काव्य में विद्रोह के विविध आयाम** 17
  – पवन कुमार सिंह
- **'रंगभूमि' उपन्यास और भूमि अधिग्रहण का प्रश्न** 21
  – राजू मौर्य
  – प्रो. राजेश कुमार मल्ल
- **भारत में अनुवाद की परंपरा** 24
  – डॉ. मधुमिता ओझा
- **वीर रस के परिप्रेक्ष्य में कवि रैदास** 30
  – विशाल चौहान
  – डॉ. नित्यानंद श्रीवास्तव
- **सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्यापनरत माध्यमिक स्तरीय संस्कृत अध्यापकों के संस्थानिक समायोजन का अध्ययन** 32
  – देवेश प्रसाद सकलानी
  – डॉ. सुरेन्द्र महतो
- **अमृतलाल नागर के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक विषमता** 37
  – शशि शेखर पाण्डेय
- **हिंदी साहित्य और बदलता समाज** 39
  – डॉ. पूनम रानी
- **जीवनीपरक उपन्यासकार 'रांगेय राघव'** 42
  – डॉ. दीक्षा गुप्ता
- **स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी कहानी और महिला लेखन** 45
  – भावना कुमारी एस. गोहिल
  – प्रो. ए. एम. युसुफजई
- **हिंदी और ज्योतिष: संस्कृतिज्ञान से आधुनिक विज्ञान तक की यात्रा** 49
  – डॉ. मृत्युञ्जय कुमार तिवारी
- **भारतीय संगीत में प्रयुक्त अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन** 51
  – निखिल रंजन
  – प्रो. उषा सिंह
- **हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश** 54
  – शिवेन्द्र सिंह

❖ **आलेख**

- **शक्ति-उपासना की सर्वव्यापकता** 59
  – चौधरी रघुनंदन प्रसाद सिंह

❖ **कहानी**

- **छाया** – मनीष कुमार सिंह 61
- **सौदा** – शिव अवतार पाल 63

❖ **लघु कथा**

- **अनमोल है जीवन** – डॉ महिमा श्रीवास्तव 57
- **पुराना दरवाज़ा** – पवन शर्मा 62
- **संस्कार** – वीरेंद्र बहादुर सिंह 68

❖ **हिन्दी दिवस विशेष**

- **'हेय' की नहीं 'हित' की भाषा है हिन्दी** 57
  – डॉ. अर्पण जैन 'अविचल
- **जनसंचार से वैश्विक फलक पर फैलता हिन्दी** 58
  – डॉ नन्द किशोर साह

❖ **ग़ज़ल**

– डॉ.राकेश जोशी 38

❖ **कविता**

– डॉ अमित रंजन 29

❖ **पुस्तक चर्चा**

- **जिजीविषा और जीवट के धनी दो साहित्यकारों की किताबें** 66
  – पतहर प्रतिनिधि

❖ **पुस्तक समीक्षा**

- **'रंग बारिश' कविता की ज़मीन पर हिंदी ग़ज़ल का आकाश** 67
  – डॉ ज़ियाउर रहमान जाफ़री

शोध पत्र

आलोचना का स्वरूप एवं भारतेन्दु की आलोचना-दृष्टि

डॉ०अभिषेक कुमार मिश्र

शोध सारांश -

आलोचना साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी में आलोचना का जन्म 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध, भारतेन्दु काल से माना जाता है। आलोचना रचना तथा रचनाकार के लिए, सहृदय (पाठक) के लिए तो उपयोगी है ही साथ ही ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में स्वयं भी बहुत उपयोगी है। इसी रूप में आलोचना की स्वतंत्र सत्ता भी है। वह रचना के जटिल अर्थ स्तरों को उद्घाटित करके पाठक को रचना का जीवंत बोध कराती है,जहां पर पाठक के ज्ञान को नूतन आयाम मिलता है। इसी रूप में आलोचना की चरम सार्थकता है। भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम आलोचक माने जाते हैं। इस दृष्टि उनका 'नाटक' (1883) नामक निबंध हिन्दी आलोचना का प्रस्थान बिन्दु माना गया है। यहीं से हिन्दी में 'सैद्धांतिक आलोचना' की शुरुआत स्वीकार की गई है। इस कृति में भारतेन्दु ने युग-बोध का परिचय देते हुए सामयिक परिस्थिति के अनुरूप हिन्दी नाटकों के विकास की दिशा में परिवर्तन की वकालत की है। उनकी आलोचना दृष्टि जहां एक तरफ संस्कृत नाटक परंपरा एवं नाट्यशास्त्र से प्रभाव ग्रहण करती है वहीं दूसरी तरफ वे नाटकों की देशज प्रकृति का आदर करते हुए पाश्चात्य नाट्य परंपरा का भी स्वागत मुक्त कंठ से करते हैं। अपनी आलोचनात्मक स्थापना में भारतेन्दु इसे जनरुचि तथा जन भावना के अनुकूल स्वीकार करते हैं।

बीज शब्द -

आलोचना, आलोचक, कृति, व्याख्या, विश्लेषण, विवेचन, गुण-दोष, समग्रता, नाटक, सहृदय, वैचारिक, बौद्धिक, युग-बोध, जनरुचि, नाट्यशास्त्र, अनुशीलन आदि।

आलोचना एक वैचारिक और बौद्धिक प्रक्रिया है। साहित्य के अन्य रूपों की तुलना में आलोचना में बुद्धि-व्यापार की ज्यादा जरूरत पड़ती है। आलोचक एक पाठक होते हुए भी सामान्य पाठक से इसलिए विशिष्ट और श्रेष्ठ है कि जहाँ किसी कृति या रचना का अनुशीलन करते हुए सामान्य पाठक भावना या आवेश में आकर उसमें बहने लगता है, वहीं आलोचक कृति का अनुशीलन एवं अवगाहन करते समय अपनी 'विवेक शक्ति' (Discriminating Power) को सामान्य पाठक की तरह सीमित या कुंठित नहीं करता वरन् जीवन के मानवीय मूल्यों की कसौटी पर कृति का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण, समीकरण एवं मूल्यांकन करता है। वह एक ऐसा प्रबुद्ध पाठक है, जो कृतिकार के अनुभव का मूल्यांकन एवं विश्लेषण करता है। कोई कृति अच्छी है या बुरी ? या उसमें जीवंतता के वे गुण हैं या नहीं, जो उसे लम्बे समय तक जीवित रख सकें ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनकी ओर सामान्य पाठक का ध्यान नहीं जा पाता। वह कृति का अनुशीलन करते हुए उसमें से दैनिक व्यवहार के स्थायी चीजों को तो ढूंढ लेता है, किन्तु कलाकृति के स्थायी तत्त्वों का निर्णय करने के लिए न तो उसके भीतर उतना धैर्य है, न उतना अपेक्षित ज्ञान, न उतनी सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति। वस्तुतः कृति के पूर्ण रसबोध के लिए एक विशिष्ट मानसिक एवं भावात्मक कल्पना, अभिज्ञता एवं शिक्षा की जरूरत होती है, जो एक सजग एवं सचेत आलोचक में होती है। इस कारण एक सच्चे आलोचक के लिए बौद्धिक समझदारी एवं बौद्धिक तटस्थता नितान्त अपरिहार्य है। इसके अभाव में आलोचना प्रभाववादी तथा आग्रहपूर्ण होकर रह जाती है। रचना के साथ तादात्म्य और तटस्थता यद्यपि दोनों दो विरोधी स्थितियाँ हैं, किन्तु एक सच्चे समीक्षक द्वारा दोनों का ही निर्वाह होता है। उसके भीतर सहृदयता व संवेदनशीलता के साथ वस्तुनिष्ठ बौद्धिक तटस्थता व समझदारी भी होती है।

आलोचना शब्द 'लुच' धातु से बना है, जिसका अर्थ है लोचन अर्थात् देखना। देखने के अर्थ में आलोचना का तात्पर्य पूर्ण रूप से तथा समग्रता में देखना है। इसीलिए किसी वस्तु अथवा किसी कृति की सम्यक व्याख्या या उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना कहलाता है। इस विषय में सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवर सिंह का यह विचार उल्लेख्य है-"मेरा काम है-समालोचना। पहले खुद देखना। अगर दिखाई न दे तो बार-बार देखना। खुद देखना और दूसरों को दिखाना पर हर हाल में मुकम्मल देखना।..समालोचना का धर्म देखने और दिखाने का है। जो नहीं दिखाई दे रहा है,परदे के पीछे जो छिपा है उस परदे को हटाकर दिखा सकूँ कि देखो सच यहाँ छिपा है। इस तरह जो दूसरे सच को नहीं देख सके उन्हें भी दिखा सकूँ। फिलहाल मेरी नजर में मेरा धर्म यही है। आलोचना का भी शायद धर्म यही होगा।"[1] आलोचना के लिए समीक्षा, समालोचना और मूल्यांकन शब्द भी प्रचलित है। यद्यपि इन शब्दों में कोई विशेष अंतर नहीं है किन्तु गहराई से देखने पर इनमें अंतर की एक सूक्ष्म विभाजक रेखा अनुभव की जा सकती है। 'समीक्षा' शब्द 'ईक्ष' धातु से निर्मित है,जिसका आशय सम्यक इच्छा से है। एक तरह से भलीभाँति अर्थात समग्रता में देखने की इच्छा ही समीक्षा कहलाती है। सामान्य जीवन में आलोचना के अंतर्गत दोषों को देखने तथा छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है किन्तु साहित्यिक स्तर पर आलोचना में गुणों और दोषों दोनों का ही सम्यक मूल्यांकन किया जाता है। आलोचक किसी कृति का विवेचन करते हुए उसकी विशेषताओं और दोषों दोनों को ही देखता है। गुण और दोष दोनों की परख के कारण ही आलोचना